Chap-1

प्रथम अध्याय

डा० धर्मवीर भारती : जीवनी एवं कृतित्व

प्रथम अध्याय

डा0 धर्मवीर भारती : जीवनी एवं व्यक्तित्व

प्रस्तुत अध्ययन की आवश्यकता :

किसी भी साहित्यकार के वाङ्मय को सम्यक् रूप से समझने के लिये उसके जीवन एवं व्यक्तित्व पर एक दृष्टिपात कर लेना प्राय: आवश्यक होता है। साहित्य रचनाकार के व्यक्तित्व विशेष का ही तो प्रतिफलन है। वह उसके नानाविध भावों, विचारों, आकांक्षाओं तथा गुण और स्वभाव के अनुरूप उसके व्यक्तित्व का आकलन प्रस्तुत करता है। तात्पर्य यह है कि साहित्य को रचनाकार के व्यक्तित्व से पृथक् करके देखना उचित नहीं है। क्योंकि लेखक के अन्त:स्थल में उसके दृष्टिकोणों या रुचि विशेष का जो जगत् निर्मित होता है वही उसकी रचना के माध्यम से उद्भासित होता है। इसीलिए यह कहा गया है कि - Art is life seen through temperment' अर्थात् कला जीवन है जो कि लेखक की प्रकृति के माध्यम से देखा जाता है। डा0 धर्मवीर भारती ने भी यह स्वीकार किया है कि 'कला कृति, चाहे वह शब्दों में हो या संगीतात्मक ध्वनियों में, चाहे रंगों और रेखाओं में हो या स्थापन में---- किन्तु उससे कलाकार के अन्तर्जगत् का निकटतम सम्बंध रहता है। प्रत्येक कविता या चित्र या गीत का उद्गम कलाकार के मानस से होता है, इसमें कोई सन्देह नहीं है।"[1] इसी बात को और भी अधिक स्पष्टता के साथ उन्होंने कहा है - 'वह सृजन व्यक्ति के द्वारा होता है, उसके जटिल, गहन, अनेक स्तरोंवाले अन्तर्जगत् से उद्भूत होता है ------यदि वह व्यक्ति और उसका वह जटिल अन्तर्जगत् न हो तो सृष्टि के आदि से लेकर आज तक की समस्त सामाजिक शक्तियां और राजसत्ताएं महान कविता की एक सी पंक्ति, या एक भी सप्राण या सजीव चित्र नहीं रच सकती थीं।"[2]

1- मानव मूल्य और साहित्य (प्र0 सं0 1960 ई0) पृ0 156

2- वही- पृ0 158

वस्तुत: डा0 भारती के उक्त कथन में रचनाकार के कला-व्यक्तित्व की साहित्य में स्वतंत्रतया प्रतिष्ठा या गरिमा का भाव सन्निहित है। यदि उसके कला-व्यक्तित्व को साहित्य में स्वतंत्रतया उजागर होने नहीं दिया जाता, तब ऐसी स्थिति में उसकी कला भी निष्प्राण हो जाया करती है। उसमें मौलिकता जैसी कोई चीज नहीं रह पाती। आरोपित व्यक्तित्व से लिखा गया प्रचारवादी साहित्य जो प्राय: अपने कृतिकार की व्यक्तिगत भावनाओं और जीवन-जगत् को देखने-दिखानेवाली उसकी दृष्टि विशेष की उपेक्षा कर देता है, कदापि अपना चिर स्थायी-महत्व नहीं पा सकती।

इस विवेचन से यह स्पष्ट है कि साहित्य में व्यक्तित्व का स्थान असन्दिग्ध बना रहता है। आज का वैज्ञानिक युग तो व्यक्ति-स्वातंत्र्य या व्यक्ति प्रधानता का युग है। साहित्य में भी व्यक्तित्व प्रदर्शन या दर्शन की प्रवृत्ति बलवती होती जा रही है। यही कारण है कि आज व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति को ही काव्य स्वीकार किया जा रहा है। और इसी लिए आज साहित्य का अध्ययन करने के पूर्व उसके रचयिता के व्यक्तित्व का अनुसन्धान कर लेना और भी आवश्यक हो जाता है।

प्राय: व्यक्तित्व का विचार अनेक रूपों से किया जाता है। फिर भी सामान्य रूप से "वह जन्मजात एवं अर्जित प्रवृत्तियों का योग है"।[1] और भी- "व्यक्तित्व सभी जैविक जन्मजात प्रवृत्तियों, इच्छाओं, भूख एवं मूल प्रवृत्तियों का योग है, एवं इसमें अनुभव से प्राप्त अर्जित प्रवृत्तियां भी सम्मिलित हैं।"[2] इसी प्रकार गोरडन अल्पोर्ट ने माना है कि व्यक्तित्व एक संगठन है। यह संगठन एक विचित्र व्यवस्थापन शक्ति रखता है, जिसके द्वारा मनुष्य की मनोवैज्ञानिक व्यवस्थाओं

---

1. It is sum total of innate and acquired dispositions.
   __Valenation

2- मोरटन प्रिन्स-दी अनकान्सस, द्वि0 सं0 1924, पृ0 4

और उसके पर्यावरण के साथ बराबर ताल-मेल बैठा रहता है। व्यक्ति के सामने विभिन्न व्यवस्थाएं हैं - आदतें, लक्षण, अभिवृत्तियां, आवश्यकताएं आदि। इन व्यवस्थाओं का संगठन ही व्यक्तित्व है।[1] कहना न होगा कि तथाकथित व्यक्तित्व संगठन की व्यवस्थाएं प्रमुखतया दो प्रकार की प्रेरक शक्तियों से निर्मित या प्रभावित होती हैं - एक वह प्रेरक शक्ति है जो रचनाकार के व्यक्तित्व में निगूढ़ संस्कार के रूप में निहित रहती है, इसमें पूर्व जन्म के संस्कारों का भी योग रहता है। इससे ही साहित्यकार के व्यक्तित्व का अन्तरंग पक्ष निर्मित होता है। दूसरी वह प्रेरक शक्ति जो कवि-व्यक्तित्व को बाहर से प्रभावित करती है। व्यक्ति या समाज को आन्दोलित करनेवाले युगीन वातावरण में उक्त प्रेरक शक्ति विपुल मात्रा में रहती है। कभी-कभी प्रभावातिरेक के कारण बाहरी प्रेरक बल भी कवि व्यक्तित्व का अंग बन जाया करते हैं। कवि या व्यक्ति विशेष के अमुक क्षणों में किये जानेवाले व्यवहार, आचरण उसके आचार-विचार तथा वाणी प्रयोग आदि सी बातों के निरीक्षण-परीक्षण के आधार पर व्यक्तित्व की परख की जा सकती है। इस सम्बंध में उसके कृतित्व के अतिरिक्त उसकी जीवनी से भी अवगत होना अत्यावश्यक है। यहां इसी उद्देश्य से डा० धर्मवीर भारती की जीवनी एवं व्यक्तित्व से एक परिचय प्राप्त करने का अल्प प्रयास किया जा रहा है।

जन्म स्थान :

डा० धर्मवीर भारती का जन्म 25 दिसम्बर सन् 1926(जन्म पत्रिका के अनुसार शुक्ल पौष पंचमी रविवासरे 18/23 सं० 1982) में प्रयाग के अतरसुइया (अत्रि+अनसुइया) मुहल्ले की एक गलीवाले आर्यसमाजी परिवार में हुआ था। तीर्थराज

1- गोरडन अल्पोर्ट-दी नेचर आफ परसनालटी, सेलेक्टेड पेपर्स, कैम्ब्रिज 1960,

प्रयाग की यही पावन एवं अति रम्य भूमि डा० भारती के साहित्य-चिंतन एवं सृजन की प्रेरणा भूमि रही है। इसी भूमि की त्रिवेणी मिट्टी से ही उनके साहित्यिक व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है। अपने जन्मस्थान प्रयाग या इलाहाबाद के प्राकृतिक सौंदर्य एवं उसकी रूप-रचना का वर्णन उन्हीं के शब्दों में देखिये - "अगर पुराने जमाने की नगर-देवता की और ग्राम-देवता की कल्पनाएं आज भी मान्य होतीं तो मैं कहता कि इलाहाबाद का नगर देवता जरूर कोई रोमैण्टिक कलाकार है। ऐसा लगता है कि इस शहर की बनावट, गठन, जिन्दगी और रहन सहन में कोई बंधे-बंधाये नियम नहीं, कहीं कोई कसाव नहीं, हर जगह एक स्वच्छंद खुलाव, एक बिखरी हुई सी अनियमितता। बनारस की गलियों से भी पतली गलियां, और लखनऊ की सड़कों से भी चौड़ी सड़कें। याकशायर और ब्राइटन के उपनगरों का मुकाबला करनेवाली सिविल लाइन्स और दलदलों की गंदगी को मात करनेवाले मुहल्ले। मौसम में भी कहीं कोई सम नहीं, कोई सन्तुलन नहीं। सुबहें मलयजी, दोपहरें अंगारा, तो शामें रेशमी। धरती ऐसी कि सहारा के रेगिस्तान की तरह बालू भी मिले, मालवा की तरह हरे-भरे खेत भी मिले और ऊसर और परती की भी कमी नहीं। सचमुच लगता है कि प्रयाग का नगर-देवता स्वर्ग-कुंजों से निर्वासित कोई मनमौजी कलाकार है जिसके सृजन में हर रंग के डोरे हैं।"[1] सचमुच प्रयाग के इसी अल्हड़, स्वच्छंद और मनमौजी नगर-देवता ने डा० भारती को ~~स्वच्छंद और मनमौजी नगर-देवता~~ रोमैण्टिक कला-व्यक्तित्व का इन्द्रधनुषी वरदान दिया है।

माता-पिता एवं वंश-परिचय :

डा० भारती के पिता का नाम श्री चिरंजीवलाल वर्मा और माता का नाम श्रीमती चन्दा देवी था। इनका वंश मूलत: जिला शाहजहांपुर (पश्चिमी उत्तरप्रदेश)

1- गुनाहों का देवता- बारहवां संस्करण 1973, पृ० 9

के खुदागंज नाम के कस्बे का निवासी था । इनके पिता के पांच भाई थे । दो वहीं खुदागंज रहते थे तथा तीन अन्य नगरों में । पुश्तैनी पेशा जमींदारी का था, इस परिवार की बहुत बड़ी जमींदारी खुदागंज में ही थी अत: सभी अपने परिवार सहित वहीं इकट्ठे होते । इनके बाबा का नाम एवज़ राय था । वे एक धनी दबंग जमींदार थे और उनके साथ एक व्यक्ति सदैव बन्दूक लेकर चलता था । वहीं खुदागंज में इनके बाबा एवजराय की कुछ पक्की कुछ कच्ची एक बहुत बड़ी कोठी थी । अपने बाबा के वीरोचित शौक के सम्बंध में डा0 भारती जी ने लिखा है - "मैं बहुत बचपन में छुट्टियों में माता-पिता के साथ खुदागंज जाया करता था और तब की अनेक यादें अभी भी सजीव हैं । उस कोठी में तीन आंगन थे और कोठी के अन्दर ही दो कुएं थे । मद्रनि आंगन के पास एक बड़ा कमरा था जिसमें बन्दूकें, तलवारें, बरछियां, लाठियां, लालटेनें, मशालें रखी रहती थीं और दीवार पर दो जिरह बख्तर और एक ढाल टंगी रहती थी । कटारें और बघनखे भी ताख में रखे रहते थे । यह नहीं मालूम था कि यह बाबा एवजराय का शौक था या मेरे ताऊ अशर्फीलाल का जो बाबा के मरने के बाद घर के बुजुर्ग थे ।"[1]

इनके पिता स्व0 श्री चिरंजीवलाल वर्मा भी एक सच्चे देशभक्त, स्वाभिमानी उदार और उच्च आचार-विचारोंवाले एक आदर्श सिद्ध व्यक्ति थे । उन्हें अपने परिवार का जमींदारी रहन-सहन पसंद नहीं था । इसी कारण से उन्हें खुदागंज भी छोड़ना पड़ा । डा0 भारती जी ने लिखा है - "मेरे पिता एक प्रकार से अपने परिवार की सामंती जमींदारी परम्परा के विद्रोही थे । बाबा और ताऊ चाहते थे कि वे लगान वसूली और लेन-देन का काम सम्हालें, लेकिन मेरे पिता छुटपन में ही बरेली चले गये । कुछ पढ़ लिखकर रुड़की इंजीनियरिंग कालेज में ओवरसीयरी का इम्तहान पास कर आये । बाबा ने मारे गुस्से के बहुत कुछ सख्त सुस्त कहा तो घर छोड़कर जंगलात के ठीके

1- 20 अक्टूबर सन् 1976 का डा0 भारती जी का एक विस्तृत पत्र ।

की किसी फर्म में ओवरसीयर होकर बर्मा चले गये और वहां सागौन के जंगलों में भटकते रहे। वहां से काफी रूपया कमाकर लाये तो मिर्जापुर में बसे, वहां आटे की चक्की और आटे की मिलें लगायीं पर उनमें नुकसान हुआ और जाने कैसे इलाहाबाद आ बसे। वहां अतरसुइया मुहल्ले में मकान बनाया। यह सब मेरे इस संसार में आने के पहले की बातें हैं।'[1] इनके पिता अपने अपराजेय ईमान और हारती हुई सचाई की रक्षा के लिये आजीवन विद्रोही बने रहे, परिवार में भी, और बाहर भी। वे आजमगढ़ जिले के मऊनाथ भंजन के नोटिफाइड एरिया के दफ्तर में ओवरसीयर हो गये थे। सन् 1932 का जमाना था। उन्हीं दिनों गांधी जी ने 21 दिन का उपवास किया था। तब वे खद्दर और चर्खे के बजाय आजाद और भगतसिंह के प्रशंसक थे। किंतु गांधी जी की पुकार पर सरकारी नौकरी से इस्तीफा दे दिया। इसके पश्चात् उनकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रही, इसके बावजूद भी उन्होंने अंग्रेजी अफसर से, समझौता नहीं किया। इसी प्रकार जब पुश्तैनी परिवार की जायदाद का बंटवारा हुआ तब जिन भाइयों को उन्होंने बच्चों की तरह पाला पोसा और लिखाया-पढ़ाया, नौकरी दिलायी, वे सब उनके खून के प्यासे हो उठे, इसलिए कि ममतामयी दादी ने जायदाद के अलावा अपने गहने भी दिये थे, यह जानकर वे सब गहने भाइयों कीबहुओं को बाँट दिये। और यह प्रण लेकर चले आये कि अब खुदागंज कभी न लौटेंगे, 'नमक रोटी कमायेंगे और उसमें खुश रहेंगे। ऐसे कर्मठ एवं आदर्शशील पिता के अपने पर पड़े हुए बचपन के प्रभाव के सम्बंध में डा० भारती लिखते हैं - 'मैंने उस दिन दरवाजे के पास से उक्त वृतांत सुना और पिता का भक्त हो गया। उनके मूल्य, उनकी प्रखरता, उनकी उदार दृष्टि, उनकी देश भक्ति, उनकी समझौताविहीन ईमानदारी मेरा आदर्श बन गयी।'[2]

1- वही पत्र

2- वही पत्र (20 अक्टूबर 1976)

साध्वी संस्कारों वाली माँ श्रीमती चन्दाबेबी कट्टर आर्य समाजी थीं। स्वभाव से शान्त, सरल और गम्भीर मुख मुद्रा पर निष्ठा और संकल्पशीलता की तेजोमय भाव-दीप्ति सदैव विद्यमान रहती। भाषण-कला में दक्ष थी। उनकी कथनी एवं करनी में समानता पाई जाती थी। उन्होंने आर्य-महिला समाज के संगठन में पूरी दिलचस्पी के साथ अपना सहयोग दिया था। कन्या-शिक्षा की ओर भीउनकी विशेष रुचि थी और उन्होंने एक आदर्श कन्या-पाठशाला की नींव भी डाली थी।[1] अपने पुराने मकान के प्रति भी उनमें अत्यधिक आसक्ति थी। उनके गुण स्वभाव का वर्णन डा0 भारती की कहानी 'ये मेरे लिए नहीं' के दीनू की माँ में मिलता है। पति की मृत्यु (शायद नवम्बर 1939) के पश्चात् 'कर्ज उतारने और गुजर बसर करने के लिए मां छोटी बहन को लेकर गुरुकुल सासनी में नौकरी करने चली गयीं।[2] और शायद डॉ0 भारती जी के दूसरे विवाह तक जीवित रहीं।

बाल्य जीवन :

डा0 भारती जी के जन्म के पहले उनके 10 भाई बहन पैदा होकर मर चुके थे अत: मां उन्हें हमेशा अपने साथ ही रखतीं। बचपन में एक दो वर्ष पिता के साथ आजमगढ़ और मऊनाथ भंजन में बीते थे। वे अपने बचपन में छुट्टियों में माता-पिता के साथ खुदागंज जाया करते थे तब की अनेक यादें जो अभी भी सजीव हैं। उनमें से कुछ प्रेरणास्पद संस्मरण जिनसे बालक भारती के साहित्यिक कला-व्यक्तित्व का निर्माण हुआ है, यहां उद्धृत किये जा रहे हैं। 'जब भी छुट्टियों में खुदागंज जाता तब मेरे आकर्षण के दो ही केन्द्र होते। कोठी के पिछवाड़े के विशाल आंगन

1- दि0 31 मार्च 1977 को श्रीमती कान्ता भारती (मान-मंदिर रोड, नई दिल्ली) से एक साक्षात्कार द्वारा।

2- डा0 भारती जी का पत्र 20 अक्टूबर 1976।

में लगी मेंहदी, आम, इमली, बेला, गुलतस्वी के झाड़, और तरह-तरह की फूल वाली लतरें, उनमें उड़ते तोते और आंगन में खेलते गाय के बछड़े। फूलों, रंगों और खुशबुओं से प्यार उसी आंगन में पनपा। और दूसरा केन्द्र था वह कमरा तलवारों और बरछियों वाला जहां अक्सर बैठकर नौकरों से डकैतों और परियों की कहानियां सुनता, 'बालसखा' या बच्चों की अन्य पत्रिकाएं पढ़ता। कभी-कभी मेरा नौकर 'खूबी' मुझे कुरते धोती पर कमरबन्द बांधकर कमर में एक मखमली म्यान की कटार खोंस देता और मैं इसी धज में पड़ोस के पंडित जी के घर या सामने के शिवाले में घूमता रहता। पड़ोस के पंडित चाचा संस्कृत के विद्वान थे और मेरे स्व0 पिता के अच्छे दोस्त थे। उनकी विशेषता यह थी कि वे प्रातःकाल स्नान के समय कोई स्तोत्र या श्लोक आदि न पढ़कर सस्वर 'गीत-गोविन्द' का पाठ करते थे। मां उनकी इस आदत पर अप्रसन्न होतीं पर पिता अक्सर उनसे 'गीत-गोविन्द सुनते। मेरी दोपहरें अक्सर सामने के शिव मंदिर में बीततीं।--- उस समय उसके ठंडे पत्थर के फर्श पर लेटे रहना मुझे बहुत पसंद था। घट से बूंद बूंद जो पानी चूता वह जलहरी तक पहुंचते पहुंचते गुलाब की खुशबू में बस जाता। उस पानी से गर्मी की दोपहर भर मुंह पर छींटे देता रहता।'[1] इसी प्रकार अपने बाल्यकाल में उन्हें उनके परिवार की आश्रिता और किसी रिश्तेदार ताऊ की विधवा पत्नी 'अइया' बहुत अच्छी लगती थी। उसे सुबह के 4 बजे से रात दस बजे तक अपने घरेलू कामकाज में मशीन की तरह लगी हुई देखकर बालक भारती उसकी तुलना 'बालसखा' में पढ़ी हुई परियों की कहानी की शापग्रस्त 'रानी' से करता। उन्हीं के कामकाज में हाथ बंटाता और फुरसत के समय उनसे बातें करना, कहानियां सुनना बहुत पसंद था। वे गांव की नाइनों, धोबिनों, मठियारिनों और डकैतों की घरवालियों के किस्से मुझे सुनातीं और मैं उन्हें अपने भूगोल की कक्षा में पढ़े हुए पाठ-समुद्र क्या होता है? बादल कैसे बनते हैं?

1- वही- पत्र

यू0 पी0 में आकर कैसे बरसते हैं ? हालैंड के बच्चे काठ के जूते पहनते हैं और एस्कीमों बारहसिंगा का दूध पीते हैं, ये कथाएं सुनाया करता था । मेरी आधी झूठी आधी सच्ची कहानियों की सबसे पहली प्रशंसक श्रोता अम्मा अम्या थीं ।[1]

डॉ0 भारती जी का लालन-पालन आर्यसमाजी परिवार के संस्कारी वातावरण में हुआ । घर में ही संध्या, हवन, जनेऊ, ब्रह्मचर्य सभी के लिए विधिवत आचरण और मर्यादाएं थीं । माता के विदुषी होने के कारण घर में ही उन्हें माता द्वारा, वेद, उपनिषाद आदि से धर्म और दर्शन के सद्ग्रन्थों की शिक्षा और बोध-पाठ मिलता रहता था ।[2] अत: भारतीय दर्शन की दृष्टि अपने बाल्यकाल से ही इन्हें अपनी मां द्वारा मिली थी । इनके पिता इन्हें चन्द्रकान्ता संतति, भूतनाथ, रक्त मंडल, चांद का 'फांसी अंक, भारत में अंग्रेजी राज, महात्मा गांधी की आत्मकथा और चन्द्रशेखर आजाद तथा भगतसिंह की जीवनियां पढ़ने को देते । किन्तु मां बालक भारती को इनके पढ़ने से परहेज करती रहती ।[3] बाल भारती को उक्त पुस्तकों के प्रभाव के कारण बंदिनी भारत माता को मुक्त करने का स्वप्न अपने बचपन से ही था - 'उस समय का प्रखर तेजस्वी पत्र 'भविष्य' हमारे घर नियमित आता था । खुदागंज में कमरबन्द में कटार खोंसकर चलनेवाला बच्चा अब चन्द्रशेखर आजाद की तरह पिस्तौल बांधकर चलने या 'रक्त मंडल' की तरह अंग्रेजों के विरुद्ध सशक्त क्रांति करने का स्वप्न देखने लगा था ।'[4]

अपने बचपन में उन्हें मेलों में जाकर नई-नई विस्मय बोधक वस्तुओं और खेल-खिलौनों की अटूट जिद्द के साथ खरीद लेने का बड़ा शौक था । दूर-दूर चांदनी

1- वही पत्र -

2- दि0 2 अप्रैल 1972 को डा0 जगदीश गुप्त (दारागंज, नागवासुकि इलाहाबाद-6) जी से एक साक्षात्कार के आधार पर ।

3- दि0 30 मई 1977 को श्रीमती पुष्पा भारती जी से एक साक्षात्कार के आधार पर ।

4- डा0 भारती जी के 20 अक्टूबर 1976 के पत्र के आधार पर ।

रातों में टहलना, बाग-बागिचों और कमल-खिले तालाबों के किनारे सहर करना, तथा तरह-तरह के फूलों की ओर आकर्षित होना उनके शिशुमन की प्रमुख विशेषताएं थीं। दोपहर को राधेश्याम की रामायण गाना नित्य का कार्यक्रम था। इसी प्रकार उन्होंने अपनी बाल-क्रीड़ा सुलभ वृत्ति के बारे में लिखा है - 'जिसका घर का नाम बच्चन और स्कूली नाम धर्मवीर था, उसे कभी सपने में भी अंदाज न था कि वह कभी लेखक होगा, कहानियां लिखेगा। उसे तो सिर्फ इतना मालूम था अब ये फूल झरेंगे, हरी निबौलियां नीम में लगेंगी---- मिरवा और गुलकी के साथ वह नीम वाले चबूतरे पर बैठकर खेल-खेल में निबौलियों की दूकान लगायेगा और सरकंडे की तराजू बनाकर झूठ-मूठ में निबौलियां बेचेगा, मरकी, मिरवा और मुन्ना खरीदेंगे और बदले में पैसे की जगह गोल-गोल मिट्टी के ढेले देंगे। और कोई आज 30 साल बाद भी धर्मवीर के मन से पूछे : निबौलियां बेचकर कमाये गये उन मिट्टी के ढेलों की जो दौलत थी, क्या दुनिया का कोई भी लाल तानाशाह उनका अवमूल्यन कर सकता है? या कोई पीला करोड़पति उन ढेलों की कीमत चुका सकता है?'[1] इस बालोचित सरल स्वभाव के अतिरिक्त जिज्ञासु सिद्धार्थ की भांति हर चीजों और प्रकृति के सौंदर्य को विश्लेषण की कसौटी से देखने-परखनेवाला बौद्धिक मिजाज भी उनमें बचपन से ही था। एक बार कमल खिले सरोवर में अपने प्रतिबिम्ब से खेलते हुए जल-सांप को देखा जिसने उस प्रतिबिम्ब के टुकड़े-टुकड़े कर दिये थे। तब सरोवर में अपने से अलग जीनेवाले, कमल और सांपों से खेलनेवाले जीवन्त बिम्ब ने उनके किशोर मन को अनेक संवेदना और कुतूहल से भर दिया था। 'वह मैं कौन है जो अपने से अलग जीता है? की भाव-प्रक्रिया ने उनके शिशु-मन को अन्दर से अजीब बेचैनियों से अजब भावाकुलता से भर दिया था। फिर बहुत दिनों बाद झील के किनारे एक कविता भी लिखी थी - वह निरन्तर जो कि चलता आ रहा है साथ इन सबों से सर्वथा निरपेक्ष/ लापरवाह/ नीली झील के इस छोर से/ उस छोर तक/ एक जादू के सपने सा/ तैरता जाता।/[2]

1- माया, अप्रैल 1977 मेरी कथा यात्रा-लेख- पृ0 61

2- डा0 भारती पश्यन्ती, द्वि सं0 1972 पृ0 14

शिक्षा-दीक्षा एवं प्रेरणा और प्रभाव :

डॉ0 भारती की प्रारंभिक शिक्षा घर पर ही हुई और बाद में चौथे दर्जे से डी0 ए0 बी0 हाईस्कूल इलाहाबाद में नाम लिखाया। 8वें दर्जे में थे तभी उनके पिता का देहांत हो गया था और उसके बाद बहुत दारुण गरीबी में दिन बीते। तब प्रयाग में ही बसे हुए उनके मामा श्री अम्बिकृष्ण जौहरी की छत्रछाया में पले और उन्हीं की प्रेरणा, प्रोत्साहन, संरक्षण तथा अमित ममता की छाया से प्राणान्वित हो उच्च शिक्षा प्राप्त की। इण्टरमीडिएट सन् 1942 में कायस्थ पाठशाला इण्टरकालेज से किया। सन् 42 के आन्दोलन में भाग लेने के कारण एक वर्ष पढ़ाई रुक गई। पुनः सुभाष के बड़े प्रशंसक थे और वजीफों तथा मामा की सहायता से पुनः पढ़ना प्रारंभ किया। सन् '43 में प्रयाग विश्वविद्यालय में प्रवेश लिया। सन् 45 में बी0 ए0 में हिन्दी में सर्वाधिक अंक प्राप्त कर 'चिंतामणि घोष मेडल' प्राप्त किया। सन् '47 में प्रथम श्रेणी में एम0 ए0 हिन्दी किया और डा0 धीरेन्द्र वर्मा के निर्देशन में 'सिद्ध साहित्य' पर खोज की तथा सन् 1952 में पी0 एच0 डी0 की पदवी प्राप्त की।[1]

छात्रावस्था में गिरधर गोपाल, विजनारायण देव साही, रामचन्द्र वर्मा, गोपीकृष्ण 'गोपेश', डा0 जगदीश गुप्त तथा लक्ष्मीकान्त वर्मा आदि उनके सहपाठी मित्र थे। मित्रों में छात्र भारती खुले और फक्कड़ स्वभाव के थे। कॉफी हाउसों में बैठकर मित्रों के साथ साहित्यिक गोष्ठी करना, व्यंग्य-विनोद करना तथा रात में नौका विहार करना जैसी बातें उनके छात्र जीवन में विशेष रूप से थीं।[2]

1- डा0 भारती जी के 12 नवम्बर 1974 के एक पत्र के आधार पर।

2- 5 अप्रैल 1977 को श्री लक्ष्मीकान्त वर्मा जी से (हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग) में एक साक्षात्कार के द्वारा।

उन दिनों उनकी आर्थिक स्थिति बहुत गिरी हुई थी, तब अतरसुइया से यूनिवर्सिटी तक 'गोपेश' जी कीसाइकल पर बैठकर आया जाया करते थे। साहित्यकारों को डा0 भारती का सर्वप्रथम परिचय गोपेश जी द्वारा हुआ। पढ़ने में बहुत हीतेज और अत्यधिक अध्ययनशील थे। 'आजकल भारती प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में रिसर्च कर रहा है। देशीय ही नहीं, अनेक विदेशीय साहित्यों तथा संस्कृतियों का भी उसे पर्याप्त ज्ञान है। अध्ययन से ऊबने के बाद वह लिखता है और लिखने से ऊब जाने के उपरान्त पढ़ता है। इन्हीं दो के छायातप में मंचों की कला बाजियों, दल बंदियों तथा सोसायटियों की निरर्थक चिल्ल-पुकार से दूर उसका विकास हो रहा है। वह एक बनफूल की भांति खिल रहा है।'[1] छात्र अवस्था से ही अध्ययन के अतिरिक्त अपने आस पास के जीवन की, परिवेश की खुली किताब को पढ़ने की ओर उनका ध्यान अधिक रहता था - 'उसी गली में एक लड़का रहता था, भले घर का लेकिन बहुत गरीब, जो बहुत सुबह उठकर इम्तहान की तैयारी करता था, रामचंद्र शुक्ल, जयशंकर प्रसाद, सूर और जायसी, केशवदास और वेदांत से जूझता था, लेकिन रह-रह कर उसका ध्यान अपनी किताबों से उचट जाता था और मुंह अंधेर बड़े भोर महकनेवाले नीम के फलों की महक उसे बहा ले जाती थी किसी और दुनियाँ में जहां डिप्टी लाला थे, गोरी मुदियाइन थी, खूंटी चोर था, छटंकी कहारिन थी मटकी और मिरवा थे, गुलकी थी अपनी दीदी थीं और खिड़की के पीछे लेटी हुई पार्क की ओर सूनी निगाह से देखती हुई बीमार सावित्री थी, किशन उस्ताद के घर में बजती सारंगी थी और सारंगी सुनते अपने छप्पर के नीचे लेटे बिरजा और मुंशी थे।'[2] कहने की आवश्यकता नहीं कि अपने निकट के इसी परिवेश ने डा0 भारती को अपने साहित्य की रचनात्मक पृष्ठभूमि के अनेक संवेदनाशील जीवन्त सूत्र दिये हैं।

1- स्वर्ग और पृथ्वी- सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, (प्र0 सं0 सं0 2006) में गिरधर गोपाल द्वारा परिचय, पृ0 2

2- माया, अप्रैल 1977 में डा0 भारती का लेख- 'मेरी कथा -यात्रा, पृ0 61

डॉ0 भारती का अध्ययन क्षेत्र पर्याप्त विशाल था । पाठ्य पुस्तकों के अलावा कविता पुस्तकें तथा अँग्रेजी के उपन्यास पढ़ने का बेहद शौक था और उसी से लेखन के बीज उनके मन में पड़े थे । बी0 ए0 में थे तभी उन्होंने शैले, कीट्स, वर्ड-स्वर्थ, टेनीसन, एमिली डिकिन्स, तथा अनेक फ्रेंच ~~[illegible]~~ जर्मन और स्पेनिश कवियों को अँग्रेजी अनुवाद में पढ़ा था । एमिल जोला, शरच्चंद्र, गोर्की, कुप्रिन, वालजक, डिकेन्स, विक्टर ह्यूगो, सेल्मा लेगरलाफ, डॉस्टावस्की, सर्वेन्टीस तथा टालस्टाय के उपन्यास पढ़े थे । टालस्टाय का 'वार एंड पीस' तो उनके जीवन पर स्थायी प्रभाव छोड़ गया ।[1] उसी समय 'मुर्दों का गाँव', 'पृथ्वी और स्वर्ग' दो कहानी संग्रह लिखे । यह उनके रचनात्मक लेखन का प्रारंभिक समय था । उसी समय इन पर जयशंकर प्रसाद और आस्कर वाइल्ड का भी बहुत सा प्रभाव था । माखनलाल चतुर्वेदी के सम्पर्क में आ गये थे, उनसे इन्हें लिखने की बहुत प्रेरणा और प्रोत्साहन मिला । उक्त संग्रहों की 'स्वर्ग और पृथ्वी', 'पूजा', 'शिंजिनी और किंजल्क' आदि कहानियों पर जयशंकर प्रसाद और आस्कर वाइल्ड की सिंगार-सजावटवाली भाषा, झिलमिल सतरंगी कल्पना की बुनावट का जादू देखते ही बनता है । एक दिन परिमल की एक गोष्ठी में 'पूजा' कहानी पढ़ दी जिसे सुनकर उस दिन के प्रमुख अतिथि और उनके गुरु विश्वविद्यालय के कुलपति डा0 अमरनाथ झा ने अपने भाषण में यह कहा कि 'आज की कहानी को सुनकर मुझे विश्वास हो चला है, हिन्दी कहानी अब उस पथ पर है, जहाँ वह विश्व-कथा-साहित्य के स्तर को छू लेगी ।'[2] दादा पं0 माखनलाल चतुर्वेदी जी से उन्हें वैष्णवता के संस्कार मिले थे, कड़वाहट के बिना दुख झेलने का मंत्र और एक चुनौती थी । इसी से प्रेरणान्वित हो 'गुलकी बन्नो' कहानी लिखी ।

1- डा0 भारती जी के 20 अक्टूबर 1976 के एक पत्र के आधार पर ।

2- माया अप्रैल 1977 में डा0 भारती का लेख, मेरी कथा-यात्रा, पृ0 61

एम0 ए0 कर लेने के बाद मार्क्सवाद का अध्ययन प्रारंभ किया । प्रगतिशील लेखन संघ के स्थानीय मंत्री भी रहे, पर कम्यूनिस्टों की कट्टरता तथा देशद्रोही नीतियों के कारण मोह भंग हो गया । तभी उन्होंने भारतीय दर्शन, वेदान्त तथा विस्तार से वैष्णव और संत साहित्य का अध्ययन किया । और भारतीय चिन्तन की मानववादी परम्परा उनके चिंतन का मूल आधार बन गयी । उन्हीं दिनों पहले 'गुनाहों का देवता' फिर 'प्रगतिवाद एक समीक्षा' तथा 'सूरज का सातवां घोड़ा' लिखा ।

कविता के क्षेत्र में उन्हें छायावादी भाषा के बजाय बच्चन, नेपाली, नरेन्द्र शर्मा की काव्य भाषा अधिक ग्राह्य लगी तथा शेले, कीट्स और आस्कर वाइल्ड का प्रारंभिक प्रभाव काव्य शैली पर रहा । उसी समय अज्ञेय से भेंट हुई और अज्ञेय ने कुछ कविताएं दूसरे सप्तक के लिये चुनीं । उसके बाद 'ठंडा लोहा' प्रकाशित हुआ ।[1]

पांचवे दशक के प्रारंभ में डा0 भारती जी प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापन करने लगे थे जिसकी चर्चा आगे की जायेगी । इस समय तक 'परिमल' संस्था काफी सक्रिय हो चुकी थी । इस साहित्यिक संस्था का प्रमुख उद्देश्य तत्कालीन विस्थापित मन: स्थितियों एवं पतनोन्मुख साहित्यिक दृष्टिकोणों के बीच नये प्रतिमानों और मूल्य-दृष्टियों की सशक्त प्रतिस्थापना करना रहा था । परिमल द्वारा आंदोलित वैचारिक क्रांति का प्रभाव डा0 भारती की साहित्यिक साधना पर पड़ा है । साहित्य के सृजनात्मक स्तर पर 'वैयक्तिक स्वतंत्रता', 'लेखक और राज्य', 'नयी कविता', 'नितांत सम-सामयिकता का दायित्व' और 'मानव-मूल्यों के संदर्भ में लघु मानव की कल्पना' को प्रतिष्ठित करने का सूत्रपात उक्त 'परिमल' संस्था द्वारा किया गया था ।[2]

1- 20 अक्टूबर 1976 वाले पत्र के आधार पर ।

2- 'परिमल' रजत पर्व, 8,9,10 फरवरी प्रयाग- पृ0 8

डा० भारती की साहित्य-साधना पर उक्त आंदोलन का गहरा प्रभाव पड़ा है। साथ ही उक्त संस्था के संस्थापकों में डा० भारती के सक्रिय चिन्तन का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। 'पिछले ढाई दशक में आलोचना के क्षेत्र में जितने भी क्रान्तिकारी विचार आए हैं उनका सूत्र कहीं न कहीं परिमल से सम्बद्ध मिलेगा। चाहे समस्या 'नयी कविता के प्रतिमान' की हो या 'कविता के प्रतिमान' की हो, चाहे प्रश्न 'लघु मानव के बहाने उठाये जांय, या प्रतिबद्धता' के माध्यम से से, चाहे अर्थ की लय का प्रश्न हो या 'ताजी कविता' के 'शरारत-पूर्ण सह संयोजन' का--- इन संपूर्ण संदर्भों में विजयदेव नारायण साही, डा० जगदीश गुप्त, डा० रघुवंश, डा० रामस्वरूप, डा० धर्मवीर भारती, डा० नित्यानंद तिवारी आदि के सक्रिय चिन्तन का प्रभाव समान रूप से अभिव्यक्त ही है।'[1] इसी प्रकार 'प्रगतिशील लेखक संघ' क से लोहा लेने में भी डा० भारती का प्रमुख हाथ रहा है। वे किसी भी प्रकार के मतवाद के घेरे में साहित्य को बांधना ठीक नहीं समझते। इसी की प्रतिक्रिया स्वरूप उन्होंने नवलेखन के प्रतिनिधि त्रैमासिक के रूप में 'निकष' का प्रकाशन शुरू कियाथा। मजे की बात तो यह है कि उसी साहित्य में उसी नवलेखन की प्रेरणा, प्रभाव और परिपाक स्वरूप उसी समय उनकी अनेक रचनाएं- 'नदी प्यासी थी', 'चांद और टूटे हुए लोग', 'ठेले पर हिमालय' 'सिद्ध साहित्य', 'सात गीत वर्ष', 'अंधायुग', 'कनुप्रिया' और 'देशान्तर' प्रकट हुईं। अत: इस पांचवें दशक को लेखक की साहित्यिक प्रेरणा और साहित्य-सृजन का स्वर्ण-काल कहा जा सकता है। इस काल में अपने पर पड़े हुए साहित्यिक प्रभाव की दृष्टि से डा० भारती ने स्वयं यह व्यक्त किया है कि- 'इस दौरान अस्तित्ववादी तथा पश्चिम के अन्य नये दर्शनों का विशिष्ट अध्ययन किया। रिल्के की कविताएं, कामू के लेख और नाटक, जांपाल सार्त्र की रचनाएं, और कार्ल जास्पर्स की दार्शनिक रचनाओं में काफी डूबा और साथ ही महाभारत, गीता, बिनोबा और लोहिया के साहित्य

1- वही- पृ० 7

का विशेष अध्ययन किया । गांधी जी को भी नये परिप्रेक्ष्य में समझने की कोशिश की । भारतीय संत और सूफी काव्य विशेषत: कबीर, जायसी और सूर को पुन: पढ़ा और समझा । 'नाथ परम्परा और सिद्ध -साहित्य' तो रिसर्च के विषय थे ही ।'[1]

यहां यह स्मरणीय है कि डा0 भारती में अपने बाल्य और कैशोर्य काल से ही साहित्यिक संस्कार के बीज पड गये थे । बचपन में 'अइया' और नौकर 'खूबी' से सुनी हुई अनेक प्रकार की रोचक और वास्तविक जीवन-जगत् की संवेदनापरक कहानियां, माता-पिता के वैदिक-रीति-नीति के अनुकूल उच्च आदर्शों वाले संस्कार, समकालीन राष्ट्रीय नेताओं की जीवनियां, और अपने आस-पास के जीवन्त परिवेश व प्रकृति के सौन्दर्य से अभिभूत हो उससे तादात्म्य स्थापित करने की चेष्टा आदि जैसी बातों का विशेष प्रभाव उन पर रहा है जिसका प्रतिफलन उनके कृतित्व में अनेक रूपों से हुआ है । किसी भी युग में प्रत्येक मनुष्य के लिए देश, काल और परिस्थितियों में घटित घटनाएं प्राय: समान रूप से रहती हैं, किन्तु व्यक्ति-विशेष अपने निजी अनुभवों, बौद्धिक संगठन, स्वभावगत रुचि, प्रवृत्तियों तथा कल्पना या विचार दृष्टि के अनुरूप ही उन्हें ग्रहण कर लिपिबद्ध करने का प्रयास करता है । और साहित्य में मौलिकता के स्वरूप को भी इसी स्तर पर देखा जाता है । डा0 भारती के साहित्यकार पर अपने समकालीन साहित्यिक पाठानुभवों के अतिरिक्त विशेष रूप से अपने आसपास के जीवन से प्राप्त वैयक्तिगत अनुभवों और प्रेरक संदर्भों का अत्यधिक प्रभाव पड़ा है । साहित्यिक प्रेरणा और प्रभाव की चर्चा ऊपर की गई है यहां इसी संदर्भ में उनके मुहल्ले अतरसुइया की कि जिसने उनके साहित्यिक व्यक्तित्व के निर्माण की जीवन्त भूमिका रची है के महत्व को भुलाया नहीं जा सकता । इस संदर्भ में स्वयं डा0 भारती ने उसके महत्व को बड़े ही आलंकारिक रूप में स्वीकार

1- डा0 भारती जी का पत्र, 20 अक्टूबर 1976

किया है - 'लाल बुझक्कड का मूल जन्म स्थान हमारा मुहल्ला रहा होगा, क्योंकि इन अड्डों पर कहानियों के साथ राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति, आचार-व्यवहार, पाप-पुण्य, नरक-स्वर्ग, आत्मा-परमात्मा के बडे गहन प्रश्न उठ खड़े होते थे और जलेबी खाते हुए या पान की पीक थूकते हुए कोई न कोई लाल बुझक्कड़ गुरु उसका सटीक समाधान पेश कर देते थे कि बाछें खिल जाती थीं । ---मार्क्सवाद से या प्रगतिवाद से हमारे मुहल्ले का घनिष्ट सम्बंध आप नहीं जानते । क्या आपको मालूम है कि हमारे मुहल्ले के अनेक संस्कारवान परम्परापूजक परिवारों के अनेक युवक मार्क्सवाद के प्रति अत्यन्त उत्साही थे ? --- हमारे मुहल्ले में राष्ट्रीय आन्दोलन की परम्परा बहुत दृढ़ थी । 1857 में हमारे ही मुहल्ले के बहादुर बागियों को नीम के पेड़ों पर फांसी दी गयी थी । चंद्रशेखर आजाद इन्हीं गलियों में छिपा करते थे । मदन मोहन मालवीय से पुरुषोत्तमदास टंडन और लालबहादुर शास्त्री तक इन्हीं गलियों की देन थे । और सन् '42 में हमारा ही मुहल्ला सबसे ज्यादा विक्षुब्ध रहा । ---- आजादी आ गयी थी, पर आजादी आने के साथ वे सपने चरितार्थ होते नहीं दीख रहे थे, जिनके आधार पर गली-मुहल्ले ने आजादी की लड़ाई लड़ी थी । मुहल्ले में रामायण, भागवत, गीता से लेकर गांधी, बिनोबा और कार्ल मार्क्स तक की वाणी गुंजरित थी, लेकिन अन्दर ही अन्दर एक गहरी खामोशी में बेबस-सा हर परिवार टूटता चला जा रहा था । हर जिन्दगी नाकाम होती नजर आ रही थी । इसीलिए माणिक मुल्ला को लगा कि सूरथ के रथ को छह घोड़े लंगड़े हैं, एक ही समर्थ है ।"[1]

इसी प्रकार अपने मुहल्ले की प्रेरणात्मक साहित्यिक उपलब्धियों के सम्बंध में वे लिखते हैं - 'कहानियां मिलीं मुझे गली-मुहल्ले, अडोस-पडोस से । मेरा मुहल्ला

1- माया, नवम्बर 76 डा0 भारती का लेख 'सूरज का सातवां घोड़ा' की रचना सृष्टि', पृ0 30-31

अतरसुइया था । पर वह वस्तुत: एक और मुहल्ले का उपमुहल्ला था । बड़ा मुहल्ला था अहियापुर । मीरगंज, सरायमीरखां, लोकनाथ, खुशाल पर्वत, कल्याणी देवी, रानी मण्डी, अतरसुइया सभी उसके सांस्कृतिक उपनिवेश थे । ---चंद रईसों और पुराने सामन्तों की कोठियां और बागीचे और बाकी सभी निम्न मध्य वर्ग के लोगों की बस्ती थी ।"[1]

आजीविका :

डॉ0 भारती का प्रारंभिक जीवन भयंकर गरीबी के दुर्दिनों में बीता था । पिता ने सन् 31 के राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी जी की पुकार पर नौकरी से इस्तीफा दे दिया था और साथ ही बर्मा और मिर्जापुर के जंगलों के सरकारी ठेके लेना भी अस्वीकार कर दिया था । परिणामस्वरूप धीरे-धीरे घर पर छाती गई भयंकर गरीबी, कर्ज और बीमारी । पिता के देहावसान के पश्चात् तो स्वयं किशोर भारती को अपने ही परिश्रम पर निर्भर होना पड़ा । उन दिनों उनके घर की आर्थिक स्थिति अति दारुण थी । अर्थ उपार्जन का दायित्व किशोर भारती पर आ पड़ा । बहन की पढ़ाई पर का खर्च निकालना, अपनी पढ़ाई का खर्च निकालना, पिता का कर्ज चुकाना , तथा घर को चलाना आदि जैसा भार भारती ही पर था । मिलिट्री के एक सज्जन श्री कृपाराम के वहां कुछ समय तक नौकरी की और स्कूल की पढ़ाई का खर्च निकाला । फिर उसके बाद पैसा जमाकर हाईस्कूल पास किया ।[2] सन् 42 में इंटर पास किया । और वजीफों तथा ट्यूशनों के सहारे यूनिवर्सिटी में दाखिल हुए । सन् 42 के आंदोलन के बाद जब यूनिवर्सिटी खुली तब उनके पास फीस के पैसे नहीं थे । वे बताते हैं तब 'साल भर छिपकर आर्डनेन्स डिपो छिउकी में नौकरी

1- वही- पृ0 29

2- यह बात 5 अप्रैल 77 को श्री लक्ष्मीकांत वर्मा जी ने एक भेंट में बतायी थी ।

की, ताकि अगले साल दाखिले के पैसे जमा कर सकें ।[1] इसी प्रकार ट्यूशनों पर आत्मनिर्भर होकर बी०ए० किया । एम० ए० की पढ़ाई का खर्च 'अभ्युदय' संपादक श्री पद्मकांत मालवीय में पार्टटाइम काम कर निकाला । 1948 में 'संगम' सं० पं० इलाचन्द्र जोशी में सहकारी संपादक नियुक्त हुए और दो वर्ष तक 'संगम' में रहे । उसके बाद एक वर्ष तक हिन्दुस्तानी एकेडेमी में उप सचिव का कार्य किया । तदुपरान्त आठ-नव वर्ष तक प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग में अध्यापक नियुक्त हुए । सन् 60 तक वहां कार्य करने के उपरान्त 'धर्मयुग' में सम्पादक पद पर बम्बई आ गये जहां अभी तक हैं ।[2] अपने जीवन की तथाकथित बेहद आर्थिक कठिनाइयों में भी उन्होंने चिंता और निराशा को अपने तक आने नहीं दिया ।उन गरीबी के दुर्दिनों से उन्हें जो उपलब्धि हुई है, उसके सम्बंध में वे लिखते हैं -'गरीबी ने तो उसमें एक अतिरिक्त स्वाभिमान, अथक मेहनत करने की ताकत और अदम्य संकल्प शक्ति दी थी ।[3] इस बात को उन्होंने और भी अनेक रूप में व्यक्त किया है -'वसन्त भी था और पतझड़ भी । किन्तु पतझड़ के पीले पत्तों में तेजोमयी कान्ति रहती थी जो बसंत के रंगीन फूलों में छा जाती थी । ---सुख भी था और दुःख भी । किन्तु उसके दुःख में भी एक उल्लास था क्योंकि वह दुःख को दुःख न मानता था । उसकी वेदना में भी एक आनंद था क्योंकि वह जीवन की सम्पूर्णता को पहचानता था ।[4] यही कारण है कि बाहर के संघातों से जूझते हुए स्वयं उन्होंने अपनी प्रगति का पथ प्रशस्त किया है । जीवन के विराट अनस्तित्व में, गहरे अंधेरे और अनिश्चय की भयंकर घाटियों में भी उन्होंने सदैव आशा को अपने साथ रखा है -

---

1- माया, अप्रैल 77, पृ० 62

2- डा० भारती जी के 12 नवम्बर, 1974 के पत्र के आधार पर ।

3- माया, अप्रैल 77 डा० भारती का लेख- मेरी कथा-यात्रा, पृ० 63

4- डा० भारती, 'चांद और टूटे हुए लोग', (द्वि० सं० 1967) की 'कुबेर' कहानी पृ० 241

मैं
रथ का टूटा हुआ पहिया हूं
लेकिन मुझे फेंको मत ।
क्या जाने कब
इस दुरुह चक्रव्यूह में
अक्षौहिणी सेनाओं को चुनौती देता हुआ
कोई दुस्साहसी अभिमन्यु आकर घिर जाय ।

जहां उनके अपराजेय चरणों ने जीवन के तुमुल संघर्षों को सदैव हंसते हुए चुनौती दी है, वहीं दारुण गरीबी ने भी उन्हें साहित्यिक होने का अमर वरदान दिया है। उन्होंने जन-साधारण की पीड़ाओं से सहानुभूति रखनेवाला संवेदनाशील हृदय इसी गरीबी से पाया है। चाहे 'अंधायुग' का कृष्ण हो, चाहे मानव-मूल्य और साहित्य का चिंतक भारती हो वह ईसु की भांति हंसते हुए सलीब पर चढ़कर सबके दुखों को स्वयं झेलता है, भोगता है। वस्तुत: इसी गरीबी ने उन्हें मानवतावादी दृष्टि दी है। आज भी जब वे बम्बई में हैं, वहीं उनके हृदय में बैठा हुआ जन-पीडाओं का भोक्ता मसीहा ईसु या कृष्ण लिखता है - 'अतर सुइया आह्यापुर के बिम्ब मध्यवर्ग के टूटते परिवार की घुटन मुझे झनझना जाय यह स्वाभाविक है।'[1]

अध्यापक डा0 भारती :

शोध-कार्य करने के उपरान्त डा0 भारती सन् 1951 से 1959 तक प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग के हिन्दी विभाग में प्राध्यापक रहे थे। वे एक सफल एवं सम्मानीय प्राध्यापक थे। तब थोड़ा परम्परा से हटकर पढ़ानेवाले अच्छे प्राध्यापकों में उनकी गणना की जाती थी। बी0 ए0 और एम0 ए0 में पढ़ाते थे।

1- डा0 जगदीश गुप्त के नाम लिखा हुआ डा0 भारती जी का पत्र- 12 फरवरी, 1974

प्राय: वे आधुनिक विषय पढ़ाते थे, कभी प्राचीन विषय पढ़ाने के लिए डा0 जगदीश गुप्त की मदद भी ले लिया करते थे तो कभी डा0 गुप्त भी डा0 भारती से पढ़ाने में परस्पर का सहयोग ले लिया करते थे। उनके निर्देशन में दो रिसर्च स्कालर भी काम कर रहे थे। किन्तु 'धर्मयुग' में सम्पादक पद मिलने पर एक साल की छुट्टी लेकर सन् 1960 जनवरी में बम्बई आ गए थे।

अपने अध्यापन काल में उनमें नियमित रूप से पुस्तकालय जाकर अध्ययन विशेष करने की प्रवृत्ति तथा स्वयं अपना एक विशाल पुस्तकालय बनाने की वृत्ति भी उनमें थी, जो उनके पुस्तक प्रेम-[illegible] को व्यक्त करती है। तब वे दर्शन विभाग और अंग्रेजी विभाग से विशेषत: सम्बंधित थे। ~~f~~ पीरिअड समाप्त होने पर जब वे हिन्दी विभाग के बाहर जाते, तब इन्हीं दो विभागों के पुस्तकालयों के अध्ययन, चिंतन और मनन में अपना सर्वाधिक समय बिताये थे। इसी प्रभाव की प्रेरणास्वरूप फलत: उनकी भूतपूर्व पत्नी कान्ता भारती ने दर्शन-शास्त्र से एम0 ए0 किया। उनके घर में ही दर्शन था, पर जो 'दर्शन' का फल मिला ; वह अच्छा नहीं था।

प्रेम और विवाह :

डा0 भारती का पहला विवाह सन् 55 के आसपास एक पंजाबी शरणार्थी लड़की कान्ता के साथ हुआ। यह जानने मिलता है कि श्रीमती कान्ता जी श्री उपेन्द्रनाथ अश्क जी के घर टाइप सीख रहीं थी। तब प्राय: डा0 भारती जी वहां आया जाया करते थे। और श्रीमती कौशल्या 'अश्क' जी से कहा करते थे 'भाभी, कोई ऐसी पत्नी ढूंढ दीजिए जो आपके जैसी हो। अत: वहीं से उन दोनों में परस्पर का आकर्षण पैदा हुआ। शादी पहले कोर्ट द्वारा होनेवाली थी किन्तु पश्चात् स्वेच्छापूर्वक वैदिक रीति अनुसार पाणिग्रहण संस्कार संपन्न हुआ।[1] किन्तु

1- 'रेत की मछली' (ले0 श्रीमती कान्ता भारती) में उक्त विवाह का वर्णन किया गया है।

संस्कारों के तीव्र वैषम्य के कारण वह विवाह असफल रहा और बाद में विच्छेद हो गया। 'पंत के सौ पत्र बच्चन के नाम' (संपादक डा0 हरिवंशराय बच्चन) पुस्तक में श्री पंत जी ने उक्त विच्छेद के और तत्कालीन कान्ता जी की असहाय स्थिति के सम्बंध में अपने पत्र क्रमांक 22, 24, 28, 29 और 71 में बहुत कुछ लिखा है। तब कान्ता जी के साथ उनकी डेढ़ साल की बच्ची भी थी। पत्र 29 में पंत जी लिखते हैं - 'भाग्य चक्र की मारी निर्दोष सरल आत्मा है। अपने मां बाप के साथ रहने में उन्हें संकोच हो रहा था। 'तथा' वह अब इसलिए परेशान है कि भारती, 62 के बाद उसे तलाक देकर स्वतंत्र हो जाएंगे' - (पत्र-71)। अपनी उक्त स्थिति का वर्णन कान्ता भारती जी ने अपने एक उपन्यास 'रेत की मछली' में इस प्रकार किया है - '17मार्च 1962 से 19 मार्च 1962। कुल एक डेढ़ घण्टे के अन्दर मातृत्व के इतिहास की सबसे भयानक घटना किसी तूफान की तरह आयी और चली गयी थी। डायरी के इन पृष्ठों को देखकर विश्वास नहीं होता कि जीवन की इतनी कठिन परीक्षा कौन-सा हृदय दे सकता है?'[1] सम्प्रति श्रीमती कान्ता भारती 'पंत की काव्य भाषा शैली का वैज्ञानिक अध्ययन' विषय पर शोध प्रबंध लिख रही हैं। दस वर्ष प्रोड्यूसर 'स्पोकन वर्ड' रहने के बाद सम्प्रति आकाशवाणी दिल्ली के युववाणी कार्यक्रम में प्रोग्राम एक्जीक्यूटिव हैं। एक कविता संकलन 'बाल सूरज' लिखा है और 'आखिरी रिश्ते की तलाश' उपन्यास लिखा जा रहा है।

जब तक पांचवें शतक में डा0 भारती जी कान्ता जी के साथ थे तब का समय उनके साहित्य-सृजन का 'क्रियेटिव पीरिड' था। उनकी अधिकांश रचनाएं उसी समय की ऐतिहासिक उपलब्धी हैं। 'इन फीरोजी होंठों पर बरबाद मेरी जिन्दगी' जैसे उद्दाम वासना और मांसल रूपोपासना के रोमाण्टिक गीतों की प्रेरणामूर्ति शायद कान्ता भारती रही होंगी।

1- वही, (प0 सं0 1975) पृ0 43
- उक्त उपन्यास में लेखकीय जीवन और उसके निकट परिवेश को मानवीय संदर्भों में रचने का प्रयास किया गया है। कान्ता भारती जी से साक्षात्कार करने पर यह पता चला कि वह उनके वास्तविक जीवन का एक साहित्यिक दस्तावेज है। लेखक उससे उद्धरण भी दे सकता है।

प्रथम विवाह के असफल होने पर डा0 भारती जी का दूसरा विवाह शायद 63 के आसपास अपने जमाने के हिन्दी-संस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान पं0 रघुनन्दन प्रसाद शर्मा की पुत्री पुष्पा जी (स्नेहलता शर्मा) के साथ हुआ। उक्त विवाह भी प्रेम-विवाह के रूप में ही हुआ है जैसा कि डा0 भारती जी की इस कविता में वर्णित है -

'जैसे मेंहदी रची
जैसे बेंदी रची
शब्द तुमने रचे
प्रेम अदार थे ये दो
अनर्थ के :
अर्थ तुमने दिया
बांहों के घेरे
ज्यों मंडप के फेरे
ममता के स्वर
जैसे बेदी के मंत्र
गुंजरित मुंह अँधेरे'[1]

श्रीमती पुष्पा भारती बी0 ए में डा0 भारती जी की छात्रा थी। वे एक प्रतिभा सम्पन्न तेज छात्रा के रूप में अनेक प्रतियोगिताओं में भाग लेने के कारण तथा विभागीय पत्र-पत्रिकाओं में सहयोग देने के कारण अपने गुरुजनों की अत्यन्त प्रिय छात्रा रही थीं। उन दिनों उनका डा0 भारती जी से कोई परिचय विशेष न

1- धर्मयुग 'दीपावली विशेषांक' 17 अक्टूबर 1976, में डा0 भारती की कविता 'दांपत्य : यात्रा शब्द से निःशब्द तक, पृ0 17

था, जैसा एक पाठक साहित्यकार से प्रभावित रहता है, तथा छात्र अपनी जिज्ञासाओं और प्रश्नों के समाधानार्थ अपने गुरु के निकट आता रहता है ठीक वैसा ही सम्बंध डा0 भारती और श्रीमती पुष्पा जी के बीच रहा था। डा0 भारती जी के परिचय के निकट आने का पहला चान्स तो तब मिला जब एम0 ए0 कर लेने के बाद अपने शोध-प्रबंध 'नाथ सम्प्रदाय एवं संत सम्प्रदाय का तुलनात्मक अध्ययन' की सिनोप्सिस तैयार कर डा0 धीरेन्द्र वर्मा जी के पास गईं किन्तु डा0 वर्मा जी के कहने से उन्हें डा0 भारती जी के पास जाना हुआ। भारती जी के बम्बई आने पर और उससे पूर्व भी परिस्थितियां कुछ ऐसी घटित होती चली गईं कि जिससे कान्ता भारती को छोड़ना पड़ा। श्रीमती पुष्पा भारती ने दो तीन कालेजों में अध्यापन कार्य भी किया है। गृहस्थी के दायित्व-भार के कारण उन्हें अध्यापन कार्य छोड़ना पड़ा।

उनकी 'शुभागता, 'रोचक राजनीति', 'रोमांचक सत्यकथा भाग-1, व रोमांचक सत्यकथा-भाग-2 जैसी साहित्यिक कृतियां प्रकाशित हो चुकी हैं। डा0भारती जी की तीन संतानों में पुत्र किंशुक और पुत्री प्रज्ञा दो उनके बच्चे हैं। तथा पहली पत्नी से जो बड़ी बच्ची है उसका नाम पारमिता(केका) है। उनके दोनों बच्चों को यह नहीं मालूम कि पारमिता कान्ता भारती की बेटी है। उस बच्ची का भी कहना है कि पुष्पा जी तो मेरे लिए मां रही है, किसी प्रकार का कष्ट नहीं, ग्लानि नहीं, मेरे लिए तो मां यही है।'

डा0 भारती जी ने भी इस विवाह से स्थायी सुखी वैवाहिक जीवन पाया है। उन्होंने स्वयं लिखा है -'पुष्पा भारती से विवाह हुआ जिसने बहुत सुख, संतोष और शांति दी। न केवल जीवन में वरन विचारों और साहित्य चिंतन के क्षेत्र में भी उनसे एक सार्थक, गहरा, प्रेरणाप्रद साथ मिला।'[1]

1- डा0 भारती जी का पत्र- 20 अक्टूबर 1976।

विवाह और आंतरिक संघर्ष :

डा0 भारती ने जिस समय 1955 में अपने मुहल्ले अतरसुइया की आन्दरूनी जिन्दगी को 'गुलकी बन्नो' कहानी लिखकर प्रगाढ़ प्यार से उसे समझने की चेष्टा की ठीक उसी समय उस कहानी की प्रतिक्रियास्वरूप लेखक के आन्तरिक दाम्पत्य जीवन में असफलता की ट्रेजिक कॉमेडी के एक विचित्र मोड़ का प्रारंभ हो गया था। जिसके परिणाम स्वरूप अपने नव स्वीकृत दाम्पत्य सम्बंध से समझौता करके उस मुहल्ले को छोड़ना पड़ा। इसके दो तीन साल बाद लड़खड़ाता हुआ गार्हस्थ भी टूट गया।

इस बीच उन्हें उनके प्रति किये गये नितांत अप्रासंगिक मनगढ़ंत आरोपों और गर्हित कलंकों से स्वाभिमानी निष्ठापूर्वक भीतर ही भीतर संघर्ष करना पड़ा। 'आरोपों का जवाब प्रत्यारोपों से ? क्या रखा है इस अंध चक्र में, जब बेहतर काम हो जिन्दगी में पूरा करने केलिए।'[1] तब चार पांच साल तक लेखन में एक अंधेरा छाया रहा। न मुहल्ला, न अपना शहर, न कविताएं, न कहानियां। पत्थरों में चुनवाये जाते थे लोग मध्यकाल में। विश्वासघात, कृतघ्नता, आरोप और मित्रता के ठंडे पत्थरों में दफन एक शव जैसा था मैं। और उसमें फिर जान फूंकी एक दुबली-पतली लेकिन बहादुर लड़की ने, जो अब जीवन-संगिनी है, और उसे फिर एक गर्माहट दी बम्बई के उन दोस्तों ने, जो जिन्दगी को व्यापक और गहरे संदर्भों में समझना जानते थे।'[2] डा0 भारती के जीवन में अन्तर्विरोध चाहे जिस बात को लेकर पैदा हुआ हो, कॉफी हाउसों में अब उनकी चर्चाएं शायद न भी हों, किन्तु इन

1- माया, अप्रैल-1977 पृ0 64

2- वही- पृ0 64

तमाम अन्तर्संघर्षों, विरोधाभासों और असंगतियों के बीच उन्हें सबसे ज्यादा ताकत देनेवाली चीज है - अहंकारहीन गुस्सा और स्वार्थहीन नफरत। आज भी वे इलाहाबादी बच्चन(डा0 भारती के घर का नाम बच्चन था) को भूले नहीं हैं। इलाहाबाद अपने मुहल्ले अतरसुइया और वहां के लोगों के लिए अब भी वे हुडकते हैं। वे अपना असली और अखूट ज़र अपने मुहल्ले की रज, रज में देखते हैं। टूटी साइकिल और फटी चप्पलें चटकाते हुए इलाहाबाद की गलियों में घूमनेवाला वह 'बच्चन' आज भी अपने मित्र डा0 जगदीश गुप्त से कितनी व्याकुलता और आतुरता से यह पूछता है - मित्र, दोस्तों के बीच का वह निश्छल प्रगाढ़ प्यार न सिर्फ खो गया वरन् अब किसी के मन में किसी के प्रति स्नेह लोगों को सहज भी नहीं होता। इलाहाबाद बहुत बदल गया प्यारे ? ऐसा क्यों हो गया ? मैं अक्सर पूछता हूं कुछ उत्तर नहीं मिलता - सिर्फ उदास मन से दोहरा लेता हूं - रहें आबाद वे गलियां------[1]

जीवन के पतझड़ में वसंत को आमंत्रित करने वाले अदम्य जिजीविषा के इस कला-साधक के जीवन की इतनी भयंकर ट्रेजड़ी पर दृष्टिपात करते हुए श्री लक्ष्मीनारायण ने लिखा है - 'भारती इतना बिखरा है - जैसे जमीन पर सुबह के समय हरसिंगार के फूल बिखरे हों, इतनी असंगतियां रखी हैं, जैसे जंगल में सारे थालमेल हो जाते हैं कि उसे एक सूत्र में पिरोना मुश्किल हो जाता है। बिलकुल असंभव। उसे सिर्फ एक जगह पकड़ा जा सकता है- 'अंधायुग' में। युयुत्सु, अश्वत्थामा और कृष्ण की शाप-स्वीकृति में। यह है निरपराध युयुत्सु। इसे व्यक्तित्व मिला है। अश्वत्थामा का। यह अपना दर्द बिखेरता है कृष्ण के स्वरों में। युयुत्सु। बिलकुल निरपराध चोट खाये हुए बच्चे कीतरह। निरपराध पर बदनाम। प्रेम,मैत्री, प्रतिभा, परिवार के बावजूद जिसे व्यथा और दर्द के दाण मिले हैं। यह अपने

1- डा0 जगदीश गुप्त के नाम लिखा डा0 भारती का एक पत्र 12 अप्रेल 1974।

साहित्य -सृजन में प्रकाश का, ज्योति का, अग्नि का उपासक है , पर यह सबसे पहले चांद के कलंक को क्यों प्रणाम करता है ।

इसमें इतनी प्रतिभा क्यों है ? साहस क्यों है ? मारो इसके हृदय को । वह स्वीकार करेगा । यही है इसकी नियति-----भाई, इसकी राशि है कुम्भ, नक्षत्र है धनिष्ठा । सूर्य भाग्येश होकर इसकी लग्न में बैठा हुआ है । इसे तो राजयोग है । इसे मान-प्रतिष्ठा, धन पद की क्या कमी ? सूर्य अग्नि ग्रह है । अत: इसमें एक ओर जहां परम उत्साह, सक्रियता, नेतृत्व की भावना, सौभाग्य, यश, उन्नति है, वहां यह सदैव शरीर से रोगी रहेगा । इसका शुक्र मकर का है । मित्र क्षेत्री है । चन्द्रमा से दूसरा बारहवां योग कर रहा है । शुक्र है प्रेम का देवता । चन्द्रमा है काम का देवता । अत: प्रेम और काम में संघर्ष, अशान्ति, बौखलाहट ।"[1]

यहां उक्त संदर्भ में डा0 भारती एवं श्रीमती कान्ता भारती की जन्म - पत्रिकाएं प्रस्तुत की जा रही हैं जो लेखक को डा0 जगदीश गुप्त जी से सम्प्राप्त हुई हैं ।

1- सं0 कमलेश्वर 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' (प्र0 सं0 1975) में लक्ष्मीनारायण लाल का लेख 'धर्मवीर भारती', पृ0 45,46,52

: डा० धर्मवीर भारती जी की जन्म-पत्रिका :

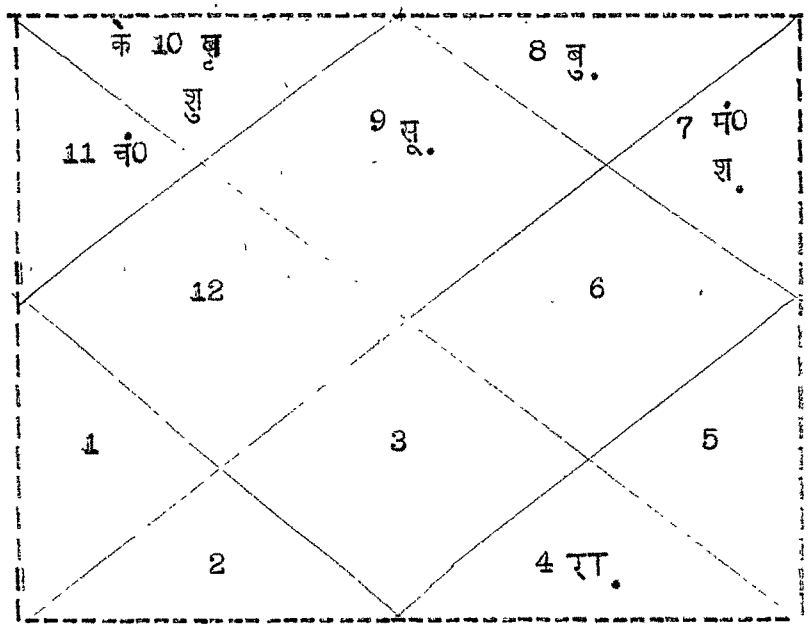

शुक्ल पौष पंचमी रविवासर

18/23 सं0 1982

धनिष्ठा नक्षत्र (मंगल)

24। 49 तृतीय चरण

हर्षल योग 04/48

सूर्योदय 01/05

घन लग्नोदय

:: श्री कान्ता भारती की जन्म पत्रिका ::

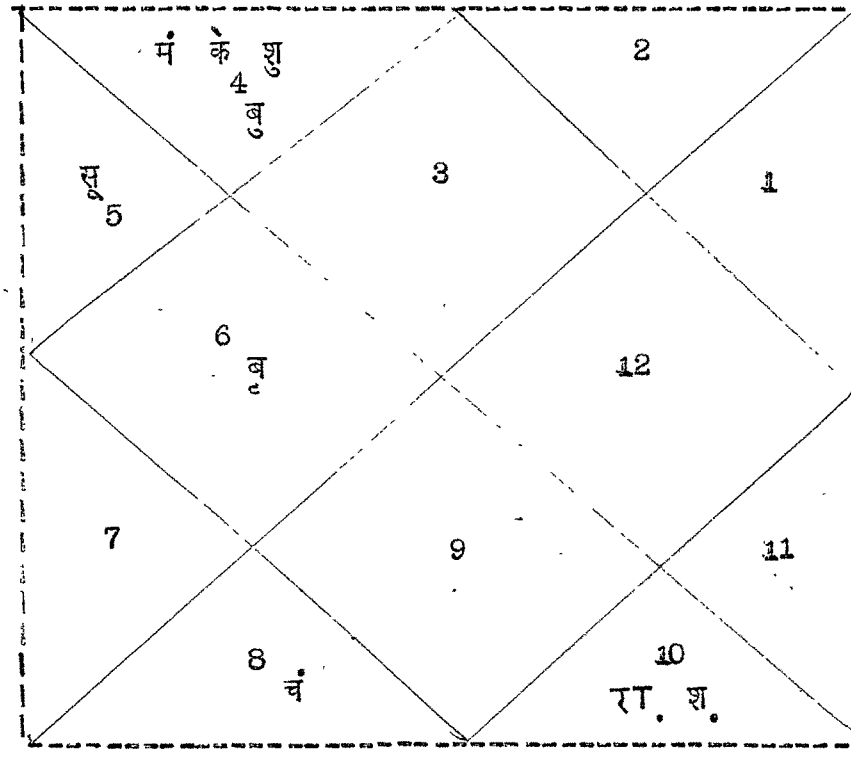

संवत् 1991 (सन् 1934) भाद्र
शुक्ल नवमी (19 अगस्त) रविवासरे ।
अनुराधा 05 / 46 वैधृत योग 51 / 00
इष्ट 51 / 17 नक्षत्र ज्येष्ठा तृतीय चरण ।

इलाहाबाद के बाद आबाद डा0 भारती :

बम्बई में आने के उपरान्त डा0 भारती की प्रगति एवं प्रसिद्धि के नये मोड़ खुले हैं। उन्होंने 1961 में कामनवेल्थ रिलेशन्स कमेटी के आमंत्रण पर प्रथम विदेश यात्रा इंगलैंड तथा यूरोप में की। फिर पश्चिम जर्मन सरकार के आमंत्रण पर 1962 में जर्मनी यात्रा तथा 1966 में भारतीय दूतावास के अतिथि बनकर इंडोनेशिया तथा थाइलैंड की यात्राएं कीं। उन्हें 1967 में संगीत नाटक अकादमी का सदस्य मनोनीत किया गया। सितंबर 1971 में मुक्तिवाहिनी के साथ बांगला देश की गुप्त यात्रा की तथा उस भयानक क्रांति का पहला आंखों देखा विवरण 'मुक्त क्षेत्रे : युद्ध-क्षेत्रे' शीर्षकान्तर्गत धर्मयुग में प्रकाशित किया। इसी प्रकार भारत-पाक युद्ध 1971 के दौरान भारतीय स्थल सेना के साथ रहकर युद्ध के वास्तविक मोर्चे के रोमांचक अनुभवों को 'युद्ध यात्रा' नामक रिपोर्ताज लेख संग्रह के द्वारा प्रकाशित किया। अप्रैल, मई 1974 में मारिशिस की यात्रा की और भारतीय मूल की मारिशियीय जनता की समस्याओं का अध्ययन किया। 1972 में पद्मश्री के अलंकरण से विभूषित किया गया।

बम्बई में आने पर डा0 भारती की ज्ञान-भूमि व भाव-भूमि का बहुत विस्तार हुआ है। देशीय और विदेशीय, राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों से न केवल उनका सम्पर्क बढ़ा है वरन् प्रत्यक्षीकरण द्वारा उन क्षेत्रों के अध्ययन में उनकी काफी पैठ भी हुई जो बम्बई से पहले कभी नहीं थी। 'धर्मयुग' को उत्तरोत्तर प्रगतिगामी बनाने के लिये जो बहुविध प्रतिभा एवं कला निपुणता चाहिए वह डा0 भारती में यहीं विकसित हो सकी। यदि ऐसा न होता तो 'धर्मयुग' आगे चल नहीं पाता। धर्मयुग में विविधवर्गीय पाठकों की रुचि, संस्कार और ज्ञान को लक्ष्य में रख विविध स्तम्भ निकलते हैं, जो उनकी सम्पादन कला से अर्जित ख्याति के सूचक हैं।

सम्प्रति उनके घर में विविध प्रकार के पेन्टिंग और मेडिकल जर्नल हैं। एक साहित्यकार होते हुए भी साहित्येतर ज्ञान-विज्ञान के विषयों से जुड़े रहते हैं। इससे स्पष्ट है कि एक सफल पत्रकार होने के लिये जिन विविध विषयों का बेसिक ज्ञान और सौंदर्य-दृष्टि होनी चाहिए वह उनमें कूट-कूट कर भरी हुई है। उनके अध्ययन कक्ष में ससलें पाल रखे हैं जिनसे वे बेहद प्यार करते हैं। विविध प्रकार के धर्म, दर्शन, इतिहास और साहित्य आदि विषयों का उनका गहरा अध्ययन आज भी उन्हें रात के डेढ़ बजे से पहले कभी नहीं सोने देता। बम्बई के भारती की ओर दृष्टिपात करते हुए श्री लक्ष्मीनारायण लाल ने लिखा है - 'बम्बई में भारती ने शायद अपने आप को पाया, धर्मयुग जैसा हिन्दी पत्र दिया - राष्ट्रीय महत्व का। अपने उन साहित्यिक और मानवीय मूल्यों को इस महानगर में भी नहीं बुझने दिया।---भारती के साथ दिक्कत यह है कि उसको इलाहाबाद से अलग करके देखने की इच्छा नहीं होती। पर बम्बई में उसका जीवन, घर-गृहस्थी, उसका इतना सुंदर परिवार देखने के लिए इलाहाबादी नहीं, वास्तव में आधुनिक निगाह चाहिए।'[1]

अपने पत्रकारी जीवन की अत्यधिक व्यस्तता के कारण उन्हें साहित्य-सृजन के अधिक क्षण उपलब्ध नहीं हो पाते। किन्तु इसके बावजूद भी जब भी कभी वे लिखते हैं उनकी रचना 'मास्टर पीस' होती है, इसमें सन्देह नहीं। यहां आने के बाद उनके तीन संग्रह 'बन्द गली का आखिरी मकान(क०सं०) 'कहनी-अनकहनी' (नि० सं०) और 'पश्यन्ती' (नि० सं०) प्रकाशित हुए हैं। और इसके अतिरिक्त भी उन्होंने बहुत कुछ लिखा है जो छपाया नहीं है।

1- सं० कमलेश्वर - 'मेरा हमदम मेरा दोस्त' पृ० 49

साहित्याराधक डा0 भारती, जीवन-दृष्टि और व्यक्तित्व के विभिन्न पक्ष :-

डा0 भारती में प्रारंभ से ही एक सच्चे और ईमानदार कला-साधक का व्यक्तित्व रहा है। इसीलिए वे साहित्य के नाम पर किसी भी प्रकार की कृत्रिमता को पसंद नहीं करते। उनमें अपने चारों ओर बिखरे सौंदर्य और जीवन की इतनी उत्कट प्यास है कि कभी-कभी तो उनका मन साहित्य की चार दीवारों में कैद रहना पसंद नहीं करता। उन्होंने लिखा है - 'यह जो कम्बख्त साहित्य की जिन्दगी है यह इतनी कृत्रिम है, इतनी बनावटी है, इतनी अस्वाभाविक है कि मन घुटने लगता है। धीरे-धीरे वे क्षण बिलकुल दुर्लभ हो जाते हैं, जब हम जीवन जीते हैं, गहराई में जीते हैं। अब मैंने सोचा है कि साहित्य की इस सार्वजनिक हलचल को जरा श्रद्धापूर्वक प्रणाम करूंगा और अपनी जिन्दगी फिर पहले जैसी बनाऊंगा ---- फूल, धूप, प्यार और सुख-दुख के गहरे हिलकोरोंवाली, खुशनुमा, उज्ज्वल, पवित्र और रंगारंग। पावस की शाम को बादलों में हजारों रंग की फूल छड़ियां खिल आती हैं न बिल्कुल वैसी ही।'[1] साहित्यिक जिन्दगी जब उन्हें अनेक कृत्रिमताओं के बीच एक बन्धन सी दम को घुटाने वाली लगती है तब उनका मन उससे भाग-छूटने की कोशिश में भी प्राकृतिक सौंदर्य के स्वच्छंद संगीत और उसकी उज्ज्वल रंग माधुरी के जादू से बंध कर स्वयं को मुक्त नहीं रख पाता। वह सौंदर्य के उन सुखद क्षणों को भावों के रंगों से साध कर परम वाणी की अभिव्यक्ति में अपने कला-साधक को अनायास ही आमंत्रित कर देता है। उनके इसी कला-साधक रूप की ओर संकेत करते हुए श्री गिरधरगोपाल ने उचित ही कहा है - 'उसने एक सच्चे कलाकार का महाव्रत लिया है और मेरी दृष्टि में सच्ची कला की उपासना में लीन है। उपासना में लीन होने के साथ-साथ वह कला के प्रति जागरूक भी है जो आजकल के साहित्यकारों में कम देखने आती है। उसे कलाकार की स्वतंत्रता का पूर्ण ध्यान है। बन्धन बन्धन है, चाहे वह पुरातन का हो, चाहे नवीन का।'[2]

1- डा0 भारती 'ठेले पर हिमालय (द्वि0 सं0 1970) पृ0 21, 22

2- डा0 भारती का कहानी संग्रह 'स्वर्ग और पृथ्वी' -सं0 विश्वनाथ प्रसाद मिश्र - परिचय, पृ0 2

आज के जीवन की विषाक्त विसंगतियों के मध्य भी उन्होंने कला के प्रति अपनी अदम्य आस्था को पराजित होने नहीं दिया है। जहां उन्होंने अर्थोपासक कलाकारों को अपनी 'बाणभट्ट' कविता में फटकारा है, 'सृजन की थकान भूल जा देवता' के चेतना शंख से हारे हुए कलाकारों में जागृति स्वर फूंका है वहीं 'परिमल-युग'[1] में नये और उगते हुए कलाकारों को बनाने और तैयार करने का श्रेय भी सम्पादित किया है। किन्तु उन साहित्यिक प्रतिभाओं को संवारने में उन्हें शंकर की तरह विष का पान भी करना पड़ा है। डा0 लक्ष्मी-नारायण लाल के शब्दों में इलाहाबाद में जब तक यह था - 'परिमल', 'निकष', 'नयी कविता' - इन सबके कारण जो उन दिनों साहित्य क्षेत्र में एक महाभारत छिड़ा था, फिर एक प्लेग-महामारी फैली थी, उसका सेनापति और रोग-बीज यही था। इसने तब जितने लोगों को अपने प्रयत्न, अपनी प्रेरणा और अगाध ममता से लेखक बनाया, उन्हें प्रसिद्धि दी और उन्हें अपनी साहित्यिक फौज में भर्ती दी, उनसे सबसे पहले यही घायल, लहूलुहान हुआ। जैसे शंकर और भस्मासुर की घटना हो।"[2] इतने आघातों के बाद भी उन्होंने कविता को अपने तहेदिल से प्यार किया है, उसके चरणों में अपने व्यक्तित्व को इतनी सरलता और गहन पूजा भावना से सम्पूर्णतया समर्पित कर दिया है कि कहीं से कोई कसाव या दुराव नहीं रह गया। यही कारण है कि उनका मन प्रायः कविता में रमता है। क्योंकि 'कविता ने उसे अत्यधिक पीड़ा के क्षणों में विश्वास और दृढ़ता दी है। कविता भारती के लिए [illegible] शान्ति की छाया और विश्वास की आवाज रही है।'[3] और भी उन्होंने यह व्यक्त किया है - 'शान्ति बहुत मिलती है काव्य-सृजन से, अभिव्यक्ति अधिक मिलती है कथा-लेखन

1- इसकी चर्चा पूर्व की जा चुकी है।

2- सं0 कमलेश्वर 'मेरा हमदम, मेरा दोस्त' पृ0 46

3- दूसरा सप्तक (सं0 अज्ञेय) (द्वि0 सं0 1970) वक्तव्य-पृ0 165

से, सच्चा आत्म-सुख मिलता है रेगिस्तानों, निर्जन बर्फ-ढके पहाड़ों, अनजान, अपरिचित प्रदेशों में निरुद्देश्य भटकने से ।"[1]

साहित्य को उन्होंने जीवन से पृथक् करके देखा नहीं है । इसीलिए वे साहित्य सृजन के स्तर पर जीवन की अभिव्यक्ति को अनुभूति की पावन सचाई से जोड़कर देखना पसंद करते हैं - 'मैंने कुछ उपन्यास लिखें, कुछ कहानियां लिखीं, कुछ नाटक और कविताएं । उनके पात्रों की पीड़ा मेरे भीतर तड़प रही थी । गांधारी, युयुत्सु, अश्वत्थामा, धृतराष्ट्र और कृष्ण ----- । मैं नहीं जानता कि ' वे लघु हैं या महान । बस वे मेरे मन की सृजन-प्रक्रिया के भीतर आते हैं । वे हैं, उनकी पीड़ा है ।"[2] तात्पर्य यह है कि उनका सृजक कलाकार पहले भोगता है और बाद में लिखता है । यही तो उस पीड़ा के भोक्ता कलाकार की 'अन्दरूनी मौत ' है जो पात्रों के माध्यम से सजीव अभिव्यक्ति पा लेती है । वास्तव में उनके कलाकार ने कला की सच्ची उपासना का महाव्रत लिया है ।

जीवन दृष्टि :

साहित्यकार स्वयं मूल्यीय दृष्टि का सृजन-कर्ता होता है । उसका मूल्य-बोध और उस पर आधारित जीवन-दर्शन वस्तुत: उसकी एकांतिक अनुभूतियों और उसके विवेक का ही प्रतिफलन होता है । डॉ० भारती का अभिमत है कि 'रचना के सम्बंध में कोई भी निर्णय रचनाकार की दृष्टि से पृथक् होकर नहीं होना चाहिए । सभी प्रश्न स्थितियों के भीतर से विचारों की सही स्थापना

1- कादम्बिनी, जून 1973 'क्यों और क्यों 'नहीं' शीर्षक स्तम्भ ।

2- दे० परिमल -स्मारिका- रजत-जयन्ती 1971 प्रस्तुतकर्ता डा० जगदीश गुप्त, में वक्ताओं की परिचर्या के बाद डा० भारती का वक्तव्य ।

यह है कि मनुष्य मात्र की अर्थवत्ता और सार्थकता के क्रमिक साक्षात्कार के साथ ही साहित्य की दृष्टि राजनीति, धर्म, दर्शन, समाज शास्त्र और नीति इन सबसे पृथक् है।'[1] तात्पर्य यह है कि वे एक किसी भी प्रकार के दुराग्रह - पूर्ण दृष्टि-भेदों से पृथक् मानव जीवन के स्वतंत्र विकास के पोषक स्वस्थ और प्रगतिगामी वैचारिक मोड़ों या स्थापनाओं को स्तुत्य मानकर चले हैं। इस दृष्टि से वे नवीनता के नाम पर पुरातनता, केवल कोरे प्रयोगों के नाम पर सांस्कृतिक परम्परा और पश्चिम के नाम पर भारतीयता का विरोध नहीं करते वरन् वे उनमें समता एवं समन्वय स्थापक विवेकोचित मूल्य दृष्टि को भी उतना ही आवश्यक मानते हैं। 'भारती केवल परम्परा तोड़ने मात्र के लिए परम्परा नहीं तोड़ता और न प्रयोग मात्र के लिए प्रयोग करता है।'[2] उनकी कला-दृष्टि की यह एक प्रमुख विशेषता है कि वे कलात्मकता के नाम पर पश्चिम की ओर नहीं जाते। उनमें जो भी होगा, उनमें भारतीय सौंदर्य को बेजिक बनाकर उनके मौलिक सौंदर्य को खोज निकालने का ही अपना नजरिया होगा। इस स्तर पर उनका जीवन-दर्शन या जीवन-दृष्टि उलझी हुई और अस्पष्ट नहीं है। इसका सोदाहरण विस्तृत अध्ययन अष्टम -नवम अध्याय में किया गया है यहां केवल इसका दृष्टि-संकेत ही पर्याप्त होगा।

डा० भारती के चिंतन की, उनकी स्थापित मान्यताओं की मूल भीति है मानवतावादी पृष्ठभूमि। वे प्रत्येक स्थितियों में मानवीय गरिमा, को अपने दृष्टि केन्द्र में रखकर मानवता के शाश्वत, विश्वव्यापी और सार्वभौम मूल्यों के आधार पर दर्शन, धर्म, कला, संगीत, अर्थ, राजनीति, राष्ट्र आदि की

1- परिमल स्मारिका अंक- 1971

2- दे० दूसरा तार सप्तक, डा० भारती : वक्तव्य।

अर्थवत्ता को, सार्थकता को ग्रहण करते हैं। जीवन के विभिन्न पहलुओं से सम्बंधित वे संस्थाएं यदि मानव की प्रगति में अपने वैचारिक दुराग्रहों या पूर्वग्रहों के रोड़े अटकाती हैं, तब वे उनकी आस्था का प्रतिमान नहीं बन पातीं। कहने की आवश्यकता नहीं कि उनकी दृष्टि नवीनता या प्राचीनता के मानवतावादी तत्वों को हीप्रश्रय दे पाती हैं। इस दृष्टि से उनमें निषेधात्मक रुख होते हुए भी समन्वय की प्रवृति विद्यमान है।

'अंधायुग' का अश्वत्थामा और 'कनुप्रिया' की राधा आज की संकटापन्न स्थितियों में अपनी अन्तश्चेतना के विवेक के आधार पर जीवन कीसार्थकता का नया प्रतिमान खोजनेवाले स्त्री और पुरुष की अस्तित्ववादी भावनाओं के प्रतिनिधि पात्र हैं। राधा अपने बाह्याभ्यंतर केसमस्त संघर्षों के बीच अपने विवेक-बोध को जागृत करते हुए अधिकारों केसार्थक दायों की मांग की जिज्ञाविषा में कनु के महाभारतीय ऐतिहासिक स्वरूप को असार्थक समझते हुए भी अंतत: आदर्शवादी भारतीय नारी के निश्चल प्रेम से संपूर्णतया कृष्ण को समर्पित हो उनके पुनर्मिलन की प्रतीक्षा में संलग्न हो जाती है। और कृष्ण भी अंतत: अपने इतिहास रचने की असफलतापूर्ण अवधूत अनुभूति में राधा की ओर खिंचे चले आते हैं। यहां 'प्रसाद' के वही मनु और श्रद्धा के समन्वित रूप की प्रतीति डॉ० भारती की श्रद्धा समन्वित कर्म बुद्धि को उजागर कर देती है।

डॉ० भारती ने मानवोपरि सत्ता को उदासीनता की दृष्टि से देखते हुए मनुष्य को ही उसके भाग्य का निर्माण करनेवाला माना है। नई सामाजिकता के अनुकूल परस्पर संवेदना शील और पावन प्रेम कीस्थिति को वे हीन दृष्टि से नहीं देखते। प्रेम को जाति, धर्म या समाज की रीतियों-नीतियों से जकड़कर देखना उन्हें उचित नहीं है। इसी प्रकार मानवता के विकास के लिए जातिगत व्यवस्थाओं और रुढ़िगत वर्ण-व्यवस्था को वे बाधक मानते हैं। उनके कथा-साहित्य तथा 'ठण्डा लोहा' की कविताओं में नई सामाजिकता को उन्होंने

विवशता और आवश्यकता बोध के प्रयत्नों के मध्य देखने की चेष्टा की है। इसी प्रकार भौतिकता के साथ आध्यात्मिक आवश्यकता पर उन्होंने अधिक बल दिया है। तात्पर्य यह है कि डा0 भारती की जीवन-दृष्टि अन्तश्चेतना के विवेक पर आधुनिक मानवतावादी विचारधारा से प्रेरित है।

व्यक्तित्व :

डा0 भारती के व्यक्तित्व को उनके अन्तरंग मित्रों ने जिन रूपों में दृष्टिगत किया है उसकी कुछ झलकियां यहां प्रस्तुत की जा रही हैं। डा0 भारती का व्यक्तित्व बड़ा ही मोहक और भावुक है। उनके कृतित्व में यही व्यक्तित्व रोमाण्टिक रूपों की अनेक आकर्षक छवियों में उजागर हो आया है। 'सफेद कुर्ता, पैजामा, काली जवाहर जैकेट, शैतान आंखों पर लापरवाही से लगा रिमलेस चश्मा, एक हाथ में अकड़ से पकड़ा गया पोर्टमैन्टू तथा दूसरे में दो चार पुस्तकें। दुबले-पतले भारती के अंग-अंग में कला है। बातों में कला की रसमसाहट, नजरों में कला की शबनमी रंगीनी, चाल ढाल में कला की शोख मधुमासी नजाकत और घनी काली भौंहों के बीच मस्तक पर पड़ी रेखाओं में कला की विराट जिम्मेदारी। हरसिंगार सा सुकुमार, फौलाद सा कठोर। एक अजब आकर्षक है उसके व्यक्तित्व में। उससे बातें करते समय आपको लगेगा कि आप किसी दूसरे से नहीं, किसी निकटतम से नहीं, वरन् स्वयं अपने आप से बातें कर रहे हैं। और अपनत्व के इसी जादू के कारण उससे बातें करनेवाला थोड़ी देर में उसका हो जाता है।"[1] भारती का व्यक्तित्व अजीब है। सहसा किसी को भी अपने में बहा ले जाने वाला। पहली भेंट में ही कोई न कोई प्रभाव छोड़नेवाला। अच्छा या बुरा। ऊंचा या नीचा। उसके उन्मुक्त निर्झर से ठहाके, लच्छेदार

1- सं0 विश्वनाथप्रसाद मिश्र 'स्वर्ग और पृथ्वी' परिचय पृष्ठ, गिरधरगोपाल।

बातें, मनगढ़ंत कहानियां, कल्पित बनायी हुई घटनाएं, पर उनका सहज यथार्थ कथन, पुरमजाक बोली। जिनपर सभी यकीन कर बैठते हैं, और बाद को पछताते हैं। यह जानकर और भी कि भारती को खुद अपनी उन बातों पर विश्वास नहीं।'[1] तथा 'धर्मवीर भारती रोमानी प्रवृति के ऐसे साहित्यकार हैं जिनके व्यक्तित्व में भारतीयता के साथ पाश्चात्य चिन्तन, प्राचीनता के साथ आधुनिकता, आर्य समाजी विचारधारा के साथ वैष्णव भावना और बौद्धिकता के साथ भावुकता सम्मिश्रित है। मूलत: वे कवि हैं। यों उनकी प्रतिभा बहुमुखी है परन्तु उनका विशिष्ट कर्तृत्व-क्षेत्र काव्य है जिसमें उनकी रचना-प्रवृति सर्वाधिक रमी है।"[2] अज्ञेय जी की दृष्टि में उनका व्यक्तित्व चित्र इस प्रकार अंकित है - 'अथक श्रम-सामर्थ्य और अध्यवसाय, बहुमुखी क्रियाशीलता, प्राचुर्य, चिरजाग्रत चिर-निर्माणशील कल्पना, सतत जिज्ञासा और पर्यवेक्षण, देश-काल या युग-सत्य के प्रति सतर्कता, परम्परा ज्ञान, मौलिकता, आत्मविश्वास और -हां, -एक गहरा विनय। भारती में ये सभी विद्यमान हैं। और भारती में एक चीज और भी है जो प्रतिभा के जरूरी तौर पर नहीं जाती-हास्य।"[3]

रुचियां, शौक और आदतें :

नीले रंग के प्रति उनका आकर्षण अत्यधिक है। घर से बाहर तक सभी वस्तुओं और वातावरण, कल्पना और विचारों को वे सहज ही अपनी नील-प्रिय दृष्टि से रंगायित कर देते हैं। उनके साहित्य में उनकी इस रुचि-प्रियता के आकर्षण को बार-बार देखा जा सकता है। 'प्राणों की अथाह नीलिमा' निबंध में उनका नील फूलों

1- सं0 कमलेश्वर 'मेरा हमदम : मेरा दोस्त' -डा0 लक्ष्मीनारायण लाल का लेख- 'धर्मवीर भारती', पृ0 50

2- सं0 लक्ष्मणदत्त गौतम- 'धर्मवीर भारती', प्रेमप्रकाश गौतम का लेख- पृ0 92

3- 'सूरज का सातवां घोड़ा' (सातवां संस्करण 1971) भूमिका-अज्ञेय।

से घिरा हुआ भावुक व्यक्तित्व मुखरित हुआ है। इसी प्रकार विभिन्न प्रकार के फूलों से उन्हें बेहद प्यार है। विशेषकर बेले के फूल आज तक उनकी कमजोरी है। फूलों के सम्बंध में उनका ज्ञान गहरा है। उनकी पुष्प प्रियता का एक प्रसंग देखिए "मैं कैसे सोता था ? -----तकिये से काफी नीचे खिसक जाता था और बेले के फूलों में अच्छी तरह अपना मुंह छिपा लेता था और माथे पर, होठों पर, पलकों पर बेले का शीत स्पर्श मुझे आच्छादित कर लेता था। ----बेचारी अम्मा मुझे रात में जगाकर कहती थीं--- राम। राम। कैसे सोये हो भारती ? आधी खटिया तो छोड़ दिये हो ---कहीं फूल में इतना मुंह डालकर सोया जात है। ठण्ड लग जइहै भइया ?"[1] इसी प्रकार फूल-बगीचा की बागवानी करना अच्छा लगता है। खास कर गुलाबों की बागबानी ज्यादा करते हैं। विविध प्रकार के पेन्टिंग और मूर्तियों को संग्रह करने की रुचि भी अधिक है, इस रूप में वे 'आर्टिस्टिक टेम्परामेन्ट वाले व्यक्ति हैं। उन्हें पुरी, दही, आलू बहुत पसंद है। अरहर की दाल और चावल की खिचड़ी बहुत पसंद करते हैं।[2] दो चीजों की बेहद प्यास है। एक तो नयी-नयी किताबों की और दूसरे अज्ञात दिशाओं को जाती हुई लम्बी, निर्जन, छायादार सड़कों की। सुविधा मिले तो जिन्दगी भर धरती की परिक्रमा देता जाऊं। मुक्त हंसी, ताजे फूल और देश-विदेश के लोकगीत, बहुत पसंद है। सबसे प्रिय कविताएं वे हैं जो गटर में पड़े शराबियों, हथौड़ा चलाते लोहारों और धूल में खेलते बच्चों की भोली आंखों में झलकती है, लेकिन जिन्हें न अभी तक लिखा, न किसी ने छापा। ---लापरवाही नस-नस में भरी है, जिससे अपना नुकसान तो कर ही लेता हूं, दूसरों की नाराजगी को भी न्योता देता फिरता हूं। हूं धुनी, धुन में आने की बात है। हौसले तो पहाड़ों को उलट देने के हैं।"[3]

1- ठेले पर हिमालय' फूल पाती' निबंध, पृ0 34

2- श्रीमती कान्ता भारती से एक साक्षात्कार में यह जानकारी मिली।

3- दूसरा सप्तक(द्वि0 सं0 1970) में भारती का वक्तव्य।

डा0 लक्ष्मीनारायण लाल ने डा0 भारती की कुछ विशिष्ट आदतों, स्वभावगत उनकी विविध चेष्टाओं और गुण विशेष को दृष्टिगत करते हुए लिखा है। -'यूं भारती अपने आपको काफी उत्फुल्ल और जीवन्त बना रखने की कोशिश करता है पर उसके अन्दर तरह-तरह की दिक्कतें हैं। पर दो-तीन तो काफी उजागर हैं। पहली है दुश्मन को दोस्त बनाने और दोस्त को दुश्मन बनाने की। इसी का एक दौरा यह भी है कि नये-नये दोस्त बनायेजायें। इसकी पहचान यह है कि भारती के गहरे से गहरे सम्बंध भी कुछ अधिक भावात्मक नहीं हो पाते, इसे वह खुद स्वीकार करता है। दूसरी आदत है कुछ न कुछ सदा गुनगुनाने की। ----तीसरी आदत है अपने नजदीकी लोगों को धोखा देने की। मसलन सबको धोखा देकर न जाने कब कैसे इतना-इतना पढ़ने और इतना अच्छा लिखने के लिए। बातें करेंगे तो लगेगा, यह वही शुद्ध अहियापुरी ही नीचे से नीचे स्तर की बातें, पर जब कुछ सभा-गोष्ठि में बोलेंगे, या पत्र-पत्रिकाओं में लिखेंगे, या एक ही सप्ताह में एक ही महीने में जब एकाएक कोई पुस्तक लिख मारेंगे तो बस अपने सिर पीटते रह जाय। इतना गम्भीर। इतनी आधुनिक। इतना सफल। इतना चर्चित।[1] 'अपनी ही मौत' शीर्षक निबंध में डा0 भारती ने अपनी आदतों व स्वभाव प्रकृति का खाका हास्य-व्यंग्य की रोचक शैली में खींचा है।

ऊपर डा0 भारती के जीवन एवं व्यक्तित्व की हलकी-पुलकी रूप-रेखाओं का आकलन प्रस्तुत किया गया है। जिसके आलोक में यह कहते ही बनता है कि अपने कैशोर्य, परिमल युग और धर्मयुग के साम्प्रतिक काल तक डा0 भारती ने अपनी बहुमुखी 'पर्सनालिटी' के द्वारा हिन्दी साहित्य को 'जल-सी निर्मल/ मणि-सी उज्ज्वल/ नवल, स्नान/ हिम धवल/ ऋजु/ तरल/ मेरी वाणी/ अर्पित रसना/' के रूप में जो कुछ प्रदान किया है, वह अपने आप में नभ के जाज्वल्यमान शुक्र तारे की भांति सदैव अविचल रहेगा, आकर्षक रहेगा। क्योंकि वे 'चांद के कलंक को भी प्रणाम करते हैं।'

1- सं0 कमलेश्वर 'मेरा हमदम : मेरा दोस्त' पृ0 50, 51